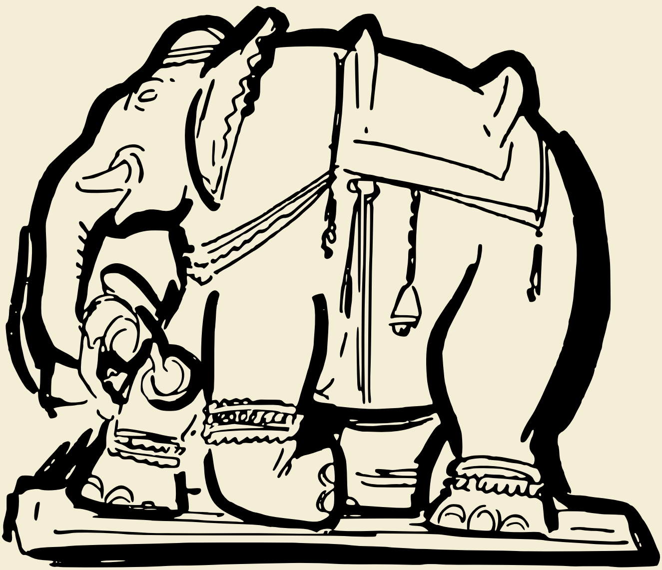
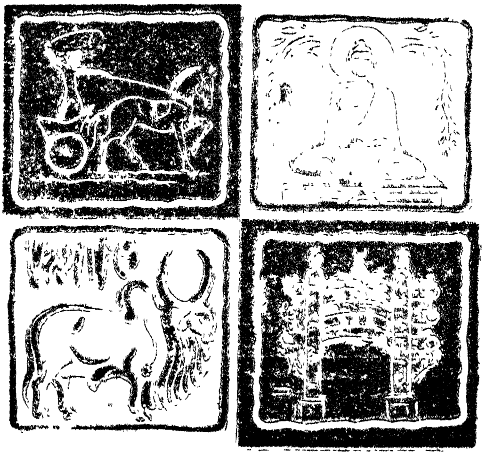
भारतीय भवनों की कहानी



स्वदेश-परिचय-माला

भारतीय भवनों की कहानी



लेखक

भगवतशरण उपाध्याय

राजपाल एण्ड सन्ज़
कश्मीरी गेट, दिल्ली-६

मूल्य : एक रुपया चार आना (१·२५)

प्रथम संस्करण : अक्तूबर १९५७

प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

मुद्रक : युगान्तर प्रेस, दिल्ली

विषय-सूची

१. ताजमहल

आदमी जनमता है, काम करता है, मर जाता है। आदमी खुद कमज़ोर है पर उसके करतब बड़े हैं, उसकी तदबीर बड़ी है। बड़े-बड़े जानवरों से—हाथी, ऊँट, घोड़े, सांड से वह बहुत छोटा, बहुत कमज़ोर है। पर उनसे वह कहीं चतुर है, कहीं होशियार। इसी से वह इतने बड़े जानवरों को भी नाथकर उनसे अपना काम लेता है। और जिन शेर, चीते आदि जानवरों से वह काम नहीं ले पाता उन्हें भी वह पकड़कर सर कर लेता है और अपने बनाये चिड़ियाघरों में लाकर बन्द कर देता है। आदमी का चमत्कार यह है!

आदमी जनमते लाचार होता है, कमज़ोर—जो खड़ा तक नहीं हो सकता, दूसरों के हाथ पलता है। मरने पर

तो वह दुनिया से गायब ही हो जाता है। जनम और मरन के बीच वह काम करता है। वही काम रह जाता है— उसके करतब का काम, तदबीर से किया काम। खुद वह तो कमजोर है पर उसका काम बड़ा है, वही रह जाता है। उसके मरन के सालों-सदियों बाद तक उसकी वह कीरत चलती रहती है, जीती-जागती रहती है।

आदमी भी खुद तो कमज़ोर है, पर उसकी कीरत बड़ी है, उसका काम बड़ा है, टिकाऊ है। जो वह करता-गढ़ता-बनाता है, वह जल्दी नहीं मरता। उसे वह अपने मरने के बाद भी छोड़ जाता है जो उसकी याद दिलाता है। आदमी जीता-मरता है पर उसका काम अमर हो जाता है। उसने इतनी ऊँची, इतनी बड़ी, इतनी सुन्दर इमारतें बनाई हैं जो आज भी ज़मीन पर खड़ी हैं, इस देश में भी, बाहर के दूसरे देशों में भी। मिस्र के पिरामिडों को जो देखता है, अचरज में पड़ जाता है। डेढ़ हज़ार मील लम्बी चीन की दीवार जो देखता है, हैरत में आ जाता है। जिन्होंने उन्हें बनाया वे कमज़ोर आदमी हज़ारों-सैकड़ों साल पहले मर गये पर उनकी ये इमारतें आज भी खड़ी हैं और दुनिया के अचरजों में गिनी जाती हैं।

इन्हीं की तरह एक अचरज अपने देश का, आगरे का ताज है, ताजमहल, मुमताजमहल का मकबरा। संसार की

सारी इमारतों से सुन्दर है यह ताज। इसका-सा मधुर कोई सपना नहीं, कोई गीत नहीं। इसका-सा क़ीमती कोई जवाहर नहीं। ताज पिरामिडों की तरह ऊँचा नहीं, चीनी दीवार की तरह लम्बा नहीं, पर उनसे कहीं महान् इमारत है। उसकी-सी प्यारी, उसकी-सी अनोखी, उसकी-सी नयनाभिराम दुनिया की कोई चीज़ नहीं। आदमी जाता है, ताज को देखता है और चकित हो जाता है। उसी में खो जाता है। उसकी बनावट, उसकी सादगी, उसकी सफ़ाई, उसकी खूबसूरती का शिकार हो जाता है।

ताज सफेद संगमरमर का बना है। चारों कोनों पर चार ऊँची बुर्जियाँ जैसे आसमान में तीर मारती हैं, जमुना की लहरियाँ लहराती हैं। ताज जमुना के किनारे बना है और जब जमुना सूखी नहीं रहती तो समूची इमारत की छाया उसकी लहरों में डोला करती है। यह ताज आरज़ूमन्द बानू बेगम की क़ब्र है। आरज़ूमन्द बानू बेगम प्रसिद्ध मुगल बादशाह शाहजहाँ की मलका थी, उसके चौदह बच्चों की माँ। उसका दूसरा नाम मुमताज महल था और इसी नाम पर उस मक़बरे का नाम पड़ा।

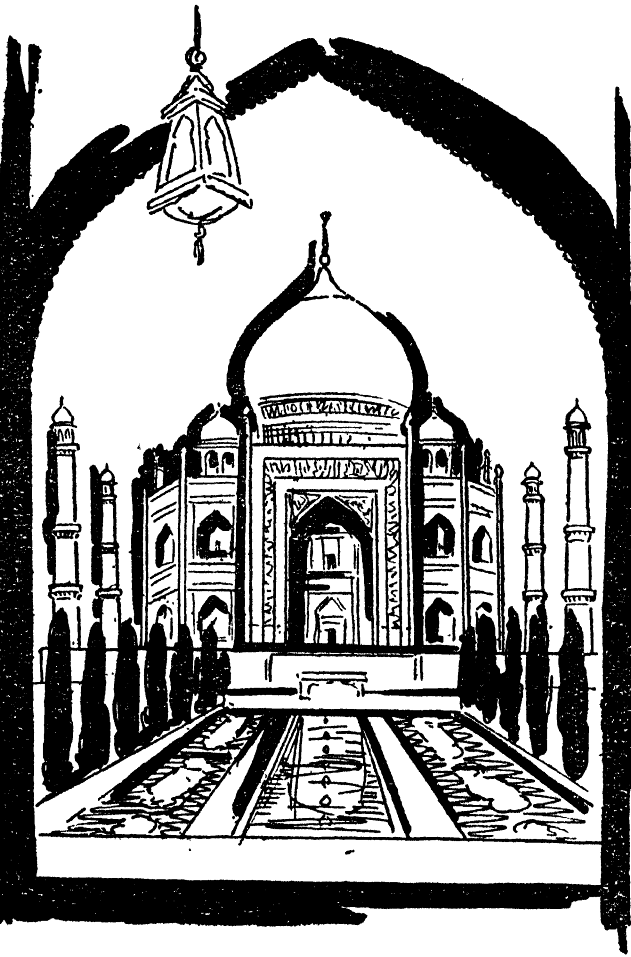
आरज़ूमन्द बानू बेगम मलका नूरजहाँ की भतीजी थी, उसके भाई और सम्राट् जहाँगीर के वज़ीर आसफ़ख़ाँ की बेटी। उसी के मरने पर शाहजहाँ ने यह उसकी क़ब्र

बनवाई। शाहजहाँ के बराबर शानदार दुनिया में कोई बादशाह नहीं हुआ। उसकी-सी शानदार और आलीशान इमारतें किसी ने नहीं बनवाईं। ताज बनवाकर वह अपने महल के कमरे से सालों, मरने के समय तक उसे देखा करता। ताज उसे बहुत प्रिय था।

इमारत में नीचे उतरकर वह कमरा है, जिसमें मुमताज-महल और शाहजहाँ दोनों की क़ब्रें हैं। उसके चारों ओर आठ कमरे बने हैं जिनमें बराबर कुरान का पाठ हुआ करता था और मधुर कंठ वाले गवैये गाया करते थे। क़ब्रों के चारों ओर संगमरमर की अचरज की खूबसूरत जाली दौड़ती है। दुनिया के अच्छे से अच्छे कलावन्तों ने उस जाली को दस बरस में काट-तराशकर तैयार किया था।

क़ब्रों के सफ़ेद पत्थर, कभी न मुरझाने वाले ईरानी फूलों के बाग बन गये हैं! जिस खूबी के साथ मुगल कलम का जादूगर चितेरा अपने चित्रों का हाशिया लिखता था, उसी बारीकी से संगतराश ने अपनी छेनी से पत्थर पर यह फूलों का बाग उगा दिया है। और इस क़ब्र पर कभी मलिन न होने वाले सुन्दर अक्षरों पर लिखा है—'आरज़ूमन्द बानू बेगम मुमताज महल की मजार। मृत्यु १०४० हिजरी।'

बाहरी मेहराबी दरवाज़ा कारवाँ-सराय से घिरा है।



ताजमहल

उसके बिचले मेहराब पर संगमूसा के बारीक हरफ़ों में खुदा है—'पाक दिल बहिश्त के बाग में प्रवेश करें।'

इस दरवाज़े से ताज का समूचा शरीर दिखाई पड़ता है। सफ़ेद, चाँदी की परी-सी, इमारत ज़मीन पर कुछ ऐसी हलकी-फुलकी बैठी है कि लगता है, क्षण भर में पंख मार कर उड़ जायेगी। इतने कम विस्तार में इतनी घनी सुघराई! कहीं कुछ कम नहीं, कहीं कुछ ज्यादा नहीं, जैसे कुदरत ने तौलकर रख दिया है। कुछ घटाया-बढ़ाया नहीं जा सकता, कुछ बदला नहीं जा सकता!

सामने पत्थर की पटियों से सजा बगीचा है, शायद दुनिया का सबसे सुन्दर बगीचा, जिसके बीच से एक पतली नहर फाटक तक चली गई है। बाग भी इमारत का ही एक हिस्सा था। इमारत की खूबसूरती इस बाग से, इसके सरों के पेड़ों से और भी बढ़ जाया करती थी। सामने एक चबूतरा ऊपर है, दूसरा नीचे। एक के फैले मैदान में फूलों का बाग कढ़ा है दूसरे पर ताज की मीनारें बनी हैं। उनके बीच ताज ऐसा लगता है जैसे चार लम्बी सहेलियों के बीच सुघड़ शहज़ादी।

दोनों ओर मस्जिदें खड़ी हैं, लाल पत्थर की मस्जिदें। ताज की इमारत एक जनानी नज़ाकत लिये हुए है। किसी ने उसे 'संगमरमर के रूप में सपना' कहा है, किसी ने 'फ़रिश्ते

का ज़ाहिर अफसाना'। कुछ भी कहा जा सकता है इस शरीफ़ इमारत की तारीफ़ में, और जो कुछ कहा जायेगा वह सारा सही होगा।

ताज बनने का किस्सा भी ग़ज़ब का है। शाहजहाँ ने इंजिनियरों से 'माडल' माँगे। इमारत बनने के पहले उसका माडल तैयार किया जाता है न। सो उसने माडल माँगे। माडल आये—चीन-मंगोलिया से, समरकन्द-फ़रगना से, ईरान-खुरासान से, ईराक-आरमीनिया से, काहिरा-अलहमरा से, वेनिस-कुस्तुन्तुनिया से। एक से एक माडल आये, खूबसूरती और इमारती रौनक के नमूने। उस्ताद ईसा का शीराज़ी नमूना शाहजहाँ को जँच गया। उसकी सादगी ने उसे मोह लिया।

काम शुरू हो गया। हिन्दुस्तान के कलावन्त, फ़ारस के रंगसाज़, अरब के संगतराश, अरमीनिया के पच्चीकार, कुस्तुन्तुनिया के गुंबजकार, वेनिस के सुनार आगरे में आकर जम गये। जयपुर से संगमरमर आया, सीकरी से संगसुर्ख़, पंजाब से सूर्यकान्त पत्थर। चीन से ज़मर्रुद और स्फटिक आये, तिब्बत से नीलमणि, अरब से मूँगा और संगमूसा। पन्ना से हीरे आये, ईरान से बिल्लौर और याकूत, शहर मुंजान से गोमेद।

कहते हैं कि इमारत में करोड़ों रुपये लगे, लाखों मज़ूर।

तब कहीं तीस साल में ताज खड़ा हुआ। देश के कोने-कोने से मजूर आये। काबुल से दकन तक और बंगाल से गुजरात-काठियावाड़ तक के किसानों ने उसी ताज के लिये सालों खेत जोते, व्यापारियों ने सौदागरी की। तब कहीं वह ताज तैयार हुआ। ताज इतना सुन्दर है, इतना क़ीमती है, बादशाह की मुहब्बत का इजहार है। पर इन सबसे बड़ी बात उसमें यह है कि हमारे देश की तीस बरस की मेहनत, किसानों और मजूरों का पसीना उसमें लगा है। वह हमें बहुत प्रिय है।

२. आगरे का किला

आगरे का किला : लाल पत्थर की ७० फुट ऊँची डेढ़ मील लम्बी दौड़ती दीवारें, बुर्जियाँ और मीनारें, विशाल दरवाज़े। अकब्बर का बनवाया हुआ है यह किला। इसकी दीवारों के भीतर आँखों को सुख देने वाली प्रसिद्ध मोती मस्जिद है, अकब्बर और शाहजहाँ के महल हैं। दोनों को आगरा प्रिय था, दोनों ही ज़्यादातर वहीं रहे थे। किले का प्रधान द्वार दिल्ली दरवाज़ा है।

किले के चारों ओर एक गहरी खाई दौड़ती है जो कभी जमुना के जल से भरी रहती होगी। बाहरी दरवाजे के भीतर हाथी पोल है, हाथी दरवाज़ा। दरवाजे के दोनों ओर दो हाथी और उनके सवार बने थे, जिन्हें विदेशी यात्रियों ने देखा था। हाथियों के सवार चित्तौड़गढ़ की रक्षा में बलि हो जाने वाले वीर सीसोदिया जयमल और पत्ता थे। उनकी

वीरता का जादू अकबर पर इतना हावी हुआ कि उसने अपने किले के द्वार पर उनकी हाथी पर चढ़ी मूरतें बनवा दीं। बाद में औरंगजेब ने उन्हें उखाड़ फेंका।

भीतर मोती मस्जिद है, इमारतों में सच्चा मोती, जिसकी सादगी और सफ़ाई मन को मोह लेती है। बिना किसी ख़ास कटाव के इतनी मनहर इमारत कम देखने में आती है। सादे रस्ते से चलकर आदमी यकायक उसके सामने आ खड़ा होता है और उसकी खूबसूरती से चकित हो जाता है। सात मेहराबों पर तीन गुम्बज हैं; लगता है, जैसे तीन कलियाँ छत से ऊपर सरक आई हैं और बस फूटने ही वाली हैं। यह मस्जिद भी शाहजहाँ की ही कीरत है।

दाहिने बाज़ू दीवाने-आम है। राह उस मीना-बाज़ार से होकर गई है जहाँ कभी सौदागर दुनिया के कोने-कोने से लाकर हीरे-जवाहर, किमख़ाब, कलाबत्तू और दूसरी कीमती चीजें बेचते और बादशाह और उसके अमीर ख़रीदते थे। सामने दीवाने-आम का सहन है जिसके पीछे खम्भों की तीन कतारें लगातार दौड़ती चली गई हैं। इमारत लाल पत्थर की बनी है।

हाल चारों ओर से खुला है। पीछे हटकर बादशाह का तख़्त बना है, जड़े संगमरमर के, जिसके पीछे शाही महल के कमरे थे। यहीं बैठकर बादशाह न्याय करता और राजदूतों से

मिलता था। तख़्त के सामने तीन फुट ऊँची संगमरमर की एक पटिया है जिस पर खड़े होकर वज़ीर बादशाह के फ़रमान लिया करता था। दाहिनी ओर की जालियों से बेगमें झाँककर दीवाने-आम का दरबार देखा करती थीं।

बादशाही ज़माने में त्यौहारों और उत्सवों के दिन दीवाने-आम के खंभे सुनहरी कारचोबी से ढक दिये जाते थे और ऊपर साटन की फूलदार चाँदनी तन जाती थी। फ़र्श कीमती नरम कालीनों और ग़लीचों से ढक दिया जाता था। बहर हाल से भी बड़ा शामियाना तन जाता था जिसके बाँस चाँदी के काम से ढक दिये जाते थे।

दीवाने-आम के सामने जहाँगीर का बनवाया हौज़ है। एक ही पत्थर को काटकर बनाया गया है, भीतर-बाहर सीढ़ियाँ हैं। पाँच फुट गहरा है यह। शायद पहले यह जहाँगीरी महल में था।

हरम की राह मीना-बाज़ार से होकर जाती है। यह भीतरी मीना-बाज़ार है। मीना-बाज़ार की कहानी बड़ी दिलचस्प है। यहाँ एक बनावटी मेला लगा करता था, ज़नाना बाज़ार, जिसमें अमीरों और राजाओं की ख़ूबसूरत रानियाँ और बेगमें और शाहज़ादियाँ ही सौदागर बनकर माल बेचती थीं और बादशाह और बेगमें ख़रीदती थीं। सौदे का मोल-तोल ख़ूब होता था और बादशाह एक-एक

पैसे के लिये मोल-मोलाव करता था। बाद में पैसों की जगह अशर्फ़ियाँ दे जाया करता था।

दीवाने-आम के पीछे मच्छी भवन है। सहन इसका कभी देखने ही लायक था। इसमें संगमरमर की फूल की क्यारियाँ थीं, पानी की नहरें थीं, फ़व्वारे थे, मछलियों से भरे हौज़ थे। पास ही शाहजहाँ ने क़ैद में जिन्दगी के बाकी दिन काटे थे।

दीवाने-आम के सामने ही दीवाने-ख़ास है। कटाव-जड़ाव का काम ग़ज़ब की खूबी से हुआ है। पूरब की कारीगरी का अचरज का नमूना। मच्छी भवन के सामने जहाँगीर का तख़्त है, जहाँ से वह बाहर के मैदान में हाथियों की लड़ाई देखा करता था। दीवाने-ख़ास के ठीक सामने जहाँगीर के नहाने के हम्माम हैं। उनका पानी बाहरी दीवार के बाहर से ७० फुट नीचे से आता था। लार्ड हेस्टिंग्स ने उनमें से सबसे सुन्दर हम्माम उखड़वा कर इग्लैंड के युवराज को भेंट कर दिया।

यहीं वह मुसम्मन बुर्ज है, जूही-महल जिसमें बारी-बारी से नूरमहल (नूरजहाँ) और मुमताज महल रह चुकी थीं। उसी में ताजमहल की इमारत आख़िरी दम तक देखता शाहजहाँ मरा था। मुसम्मन बुर्ज के सहन में एक ओर एक छोटा-सा फ़व्वारा फ़र्श के नीचे गहरा काट कर बना है।



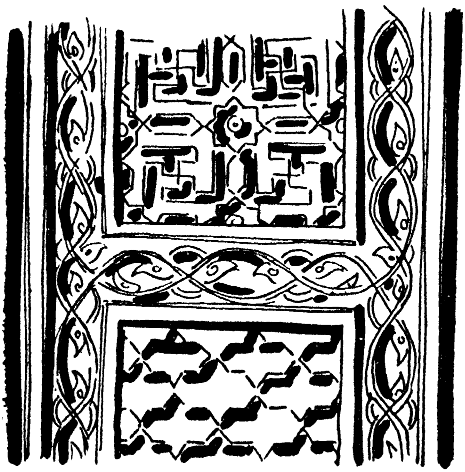
शाहजहाँ आखिरी दम तक ताजमहल देखता मरा था।

दूसरी ओर संगमूसा की पचीसी बनी हुई है।

पास ही ख़ास-महल है, बेगमों का ज़नाना, अंगूरी बाग का पूरबी हिस्सा। शाम को, जब सूरज की चमकती धूप नरम पड़ जाती है तब इसे देखो तो महल इतना सुन्दर लगता है कि देखते ही बनता है। शाम की डूबती लाली सुनहरी छत को आग की लपटों के रंग से रंग देती है, संगमरमर को गुलाबी बना देती है। और शमा जलने पर जो सुनहरी, बैजनी, लाल रंगों-रतनों वाली चाँदनी छत की रौनक

बन आती थी वह दुनिया के किसी महल को कभी नसीब न हुई। कभी ख़ास महल के ताकों में तैमूर से लेकर पिछले काल के मुगल बादशाहों तक को तस्वीरें लगी हुई थीं।

ख़ास महल के दक्खिन से एक ज़ीना नीचे तहख़ाने के कमरों को जाता है। वहाँ बादशाह और बेगमें आगरे के दिन की गर्मी से भाग कर सरन लेते थे। एक कोने में बावड़ी है, चारों ओर कमरे बने हैं जो बावड़ी के कारण ठंडे रहते थे। आस-पास वे कमरे हैं जो कभी गुमराह गुलामों और अमीरों के लिये जेल का काम करते थे और जहाँ से वे प्राणदण्ड के लिये बधिक के पास ले जाये जाते थे।



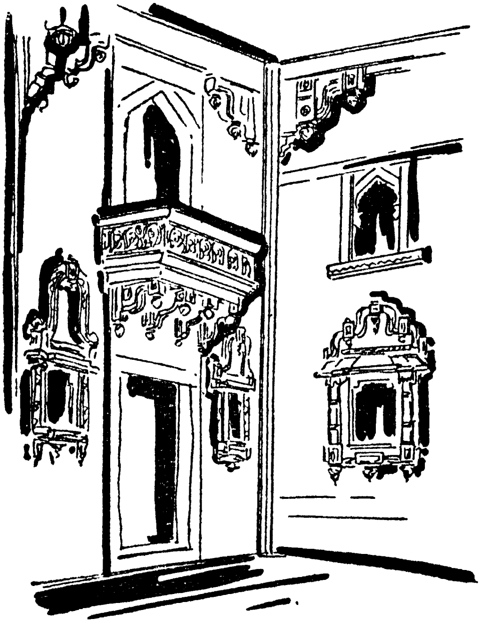
ज्यामिति के आकारों-सी फूल की क्यारियाँ

ख़ास महल के सामने अंगूरी बाग़ है, तीन ओर से मेहराबी दौरान से घिरा, शायद अकबर का बनवाया। मुगल बगीचा का ख़ासा नमूना था यह बाग, जिसमें बीच के फ़व्वारे से ज्यामिति के आकारों-सी फूल की क्यारियाँ दौड़ती थीं। कभी इसमें अंगूर की बेलें दौड़ती थीं जिनसे इसका अंगूरी बाग़ नाम था।

अंगूरी बाग़ के उत्तर शीश महल है, ज़नाना हम्माम, गुसलख़ाना। इस बाग़ की दूसरी ओर प्रसिद्ध जहाँगीरी महल है। शाहजहाँ की बनाई इमारतों में ग़ज़ब का एक लोच है, एक अजीब मस्ती, शरमायी नज़ाकत, एक ज़नानापन। अकबर की इमारतों में एक अनोखा मरदानापन है; और यह जहाँगीरी महल उसी अकबर का बनवाया हुआ है गो उसका नाम जहाँगीर से जुड़ा है। इसकी कला सीकरी की है, पुरानी हिन्दू इमारतों की ताकत और ठोसपन लिये हुए, शाहजहाँ की ईरानी-अरबी ज़नानियत से भिन्न। महल के नदी की ओर की दीवारों पर बड़े ख़ूबसूरत चित्र बने हुए थे जो अब धुँधले पड़ गये हैं।

जहाँगीरी महल के भीतर ग़ज़ब का ख़ूबसूरत आँगन है। मुगल कला का दिलकश नमूना। इसकी बनावटें तो लाजवाब हैं ही। इसके खम्भों, मेहराबों और अनगिनत टोडों से अंधेरे-उजाले की एक लुका-छिपी जो वहाँ होती रहती है उससे

उसकी सुघराई का असर दुगना हो जाता है। उत्तर की ओर जहाँगीर की हिन्दू रानी जोधपुर की जोधबाई का महल



जोधबाई का महल

है, हिन्दू ढंग से बना। उसी से लगा पच्छिम ओर का कमरा उसका मन्दिर था।

यह आगरे का किला है, अटूट यादगारों से भरा। यादगारें जो दर्दभरी हैं, शानोशौकत भरी हैं। अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ की बनाई उसमें अनेक इमारतें हैं, उनकी अपनी-

अपनी खूबियां, अपनी-अपनी सुघराई है । तीनों अधिकतर इन्हीं महलों में रहे थे । अकबर तो फ़तहपुर सीकरी के महल बनवाकर भी यहीं लौट आया था । हाँ, औरंगजेब को ज़रूर यह किला इतना नहीं रुचा और वह दिल्ली में ही अधिकतर रहता था ।

३. फ़तहपुर सीकरी

फ़तहपुर सीकरी: जैसे शाप से उजड़ा नगर। नगर कि जैसे इन्दर लोक। पर सूना, आसमान की तरह सूना, जहाँ एक परिन्दा तक पर नहीं मारता। किसने सोचा था भला कि जहाँ कभी बाबर की तोपें गरजी थीं, जहाँ सांगा के रिसाले उन तोपों की मार पर लगातार टूटते गये थे, जहाँ अकबर ने करोड़ों ख़र्च कर इतनी लगन से अनूठे महलों का अनूठा नगर खड़ा किया था, वह नगर एक दिन बनाने वाले की जिन्दगी में ही वीरान हो जायेगा, अशुभ की तरह तज दिया जायेगा।

अकबर के बेटा न था। उसने सीकरी गाँव के सलीमशाह चिश्ती की सरन ली और राजपूत रानी से सलीम पैदा हुआ जो बाद में जहाँगीर के नाम से बादशाह हुआ। उसी सीकरी में पहाड़ी पठार पर सोलह साल तक लगातार पत्थर कटते

रहे, छेनियां खटकती रहीं और छः मील के गिर्द में महल और बाग खड़े हो गये, जहां कभी शेर और चीते दहाड़ते थे। बादशाह वहां सत्रह साल मुश्किल से रहा पर पानी का वहाँ इतना अभाव हो गया कि उसे मजबूर होकर सीकरी छोड़ देनी पड़ी और वह आगरा लौट गया। सीकरी के महल वीरान हो गये, सूने।

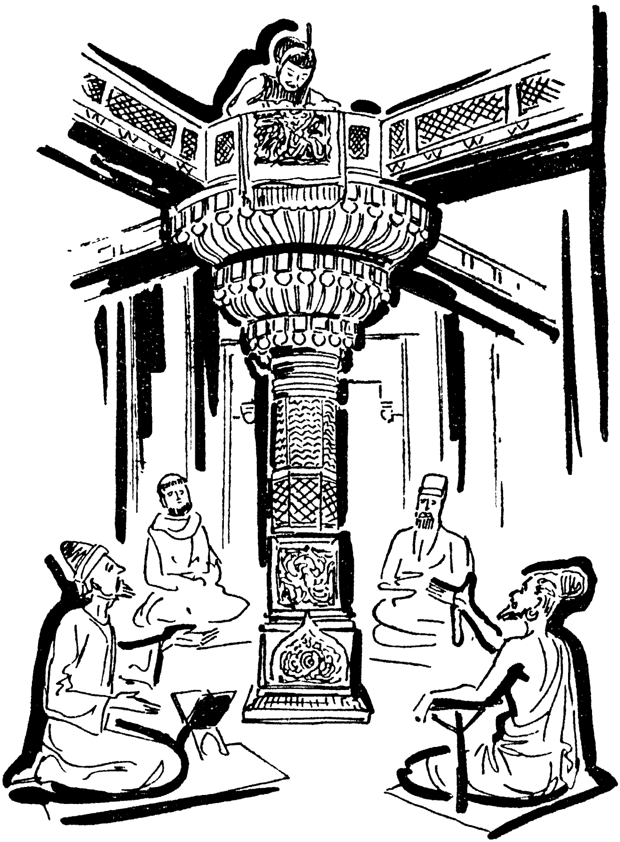
अब वहाँ की इमारतों के बारे में दो बातें कहेंगे। दीवाने-आम के चौक से निकलते ही दफ्तरख़ाना मिलता है। उसके सामने से महले-ख़ास जाने का रास्ता है। महले-ख़ास अकबर का महल था। बाईं ओर की दो मंजिली इमारत अकबर के निजी कमरों की थी। नीचे के पहले कमरे में किताबें आदि रखने के लिये जगहें बनी हैं। उसमें दीवारों पर कुछ बड़े सुन्दर फूलों के चित्र भी बने हैं। पीछे के कमरे में शायद बादशाह का तख़्त रहता था। उसके एक दरवाजे से दफ्तरख़ाना पहुँचते थे, दूसरे से जोधबाई का महल।

ख़ाबगाह या बादशाह का सोने का कमरा ऊपर छत पर था। पहले इसकी समूची दीवारें तस्वीरों से भरी थीं, पर अब थोड़ी ही तस्वीरें बच रही हैं। इनकी शैली ईरानी है और अनेक बार इन पर चीनी कलम का असर दीख पड़ता है। दुनिया जानती है कि अकबर को चित्रों और चित्रकारी से बड़ा प्रेम था। कठमुल्लों ने उसे इसी कारण काफ़िर

कहकर बदनाम करना चाहा, किया भी, पर उसने अपनी टेव न छोड़ी, और उस कला पर उसने अपना अनुराग जारी रखा।

महले-ख़ास के चौक के उत्तर-पूरबी कोने में एक निहायत खूबसूरत इमारत है; तुर्की सुल्ताना का महल, सीकरी के महलों में रतन। कमरा तो इसमें बस एक ही है, बरान्दों से घिरा, पर भीतर-बाहर के कटाव के काम और अलंकरण मुगल कला में अपूर्व हैं। उभारे बेल-बूटे, जानवर वगैरह, लगता है, सहसा जी उठे हैं। एक ढका हुआ रास्ता इसे ख़ाबगाह से मिलाता है। पास ही हकीम-हम्माम हैं जिनके जोड़ के हम्माम हिन्दुस्तान में दूसरे नहीं। महल के उत्तरी भाग में पचीसी बनी हुई है। जिस पर गोट की जगह गुलाम-बाँदियाँ बिठाकर बादशाह और बेगमें खेला करते थे।

और उत्तर, ख़ाबगाह के ठीक सामने, एक वर्गाकार अकेली इमारत है। यह दीवाने-ख़ास है। बाहर से यह दो मंज़िली लगती है पर है यह एक मंज़िली। उसके खम्भे और गैलरी से दो मंज़िल का धोखा होता है। हाल के बीचोंबीच एक विशाल शालीन खंभा खड़ा है। यह नीचे से ऊपर तक कटाव के काम से सजा है और इसका मस्तक बीसियों टोडों का बना है। उसके ऊपर चारों ओर से चार रेलिंगदार



खम्भे के मस्कत पर अकबर का तख़्त

राहें आकर मिलती हैं जिनकी सन्धि को यह खम्भा अपने सिर पर उठाये हुए है। ऐसी कोई चीज़ दुनिया में कहीं नहीं है। इसी खम्भे के मस्तक पर अकबर का तख़्त रहता

था और गैलरी के चारों कोनों पर चार वज़ीर बैठते थे। नीचे अमीर-उमरा और दूसरे आये हुए लोग बैठते थे। शायद यहीं बादशाह सभी धर्मों के पण्डितों की बहसें सुना करता था और यहीं उसने अपने नये मज़हब दीने-इलाही को जन्म दिया।

दीवाने-आम का पच्छिमी भाग ख़ाबगाह के पूरबी भाग से मिला हुआ है। हाल के बाहर बराम्दे में दो जालियों के बीच बादशाह का तख़्त है। इसके सामने ही एक पाँच मंज़िली इमारत है जिसे पाँचमहल कहते हैं। महले-ख़ास से वहाँ जाने के लिये सीढ़ियाँ बनी हैं। इसके अनेक खण्ड जालियों और खंभों से बँटे हुए हैं जो शायद शाहज़ादों-शाहज़ादियों के रहने के लिये थे। इसी के ऊपर चढ़कर शायद बादशाह और बेगमें नीचे के नज़ारे देखते थे। इसमें हिन्दू, जैन, मुस्लिम, तीनों तरीकों के काम हैं।

महल के चौक के पच्छिमी भाग में मरियम की कोठी दो मंज़िली, बड़ी खूबसूरत, हिन्दू तरीके से बनी है। कोठी यह जहाँगीर की हिन्दू माँ की थी। बरामदे के एक टोडे पर रामावतार का दृश्य खुदा है। समूची कोठी पहले चित्रों से भरी थी और सुनहरे तारों आदि का इतना इस्तेमाल उसमें हुआ था कि उसे 'सुनहरा मकान' कहने ही लग गये थे। चित्र अधिकतर ईरानी ढंग के, फिरदौसी के 'शाहनामा'

के आधार पर बने हैं। इस मकान का यह नाम ज़रूर है पर ज्यादा संभव यह है कि इसमें कोई ईरानी रानी रहती हो और जोधबाई (मरियम ज़मानी) अपने नाम के जोधबाई-महल में रहती रही हों। इस महल में एक हिन्दू मन्दिर भी है। ऊपर की जाली हवा-महल कहलाती है।

जोधबाई-महल से एक ढकी राह से जुड़ी हिन्दू ढंग से बनी एक सुन्दर दो-मंज़िली इमारत है, बीरबल या बीरबल की बेटी का महल। आस-पास की इमारतों में यह सबसे अधिक सजी है, जोधबाई-महल को छोड़ बाकी सबसे बड़ी भी है। नहीं कहा जा सकता कहाँ तक इसे बीरबल की बेटी का महल कहना उचित है। वैसे राजा बीरबल और अकबर की दोस्ती तो जहान में मशहूर है। कुछ अजब नहीं जो वह वहाँ रहता रहा हो या उसकी बेटी पर सम्राट् अकबर की कृपा रही हो और उसी को वह महल दे दिया गया हो।

सीकरी की जामा मस्जिद भी वहाँ की सब से सुन्दर इमारतों में से है। इसकी गणना संसार की मस्जिदों में है। कहते हैं कि यह मक्का की एक मस्जिद की नकल में बनी थी, यद्यपि इसकी कई चीज़ें हिन्दू शैली में बनी हैं। इसके एक दरवाजे से अकबर मस्जिद में प्रवेश करता था, दूसरे बुलन्द दरवाजे से दूसरे लोग। यह बुलन्द दरवाज़ा दकन जीतने



सीकरी की जामा मस्जिद

को यादगार में बना था। यह १७६ फुट ऊँचा है, शायद संसार के दरवाज़ों में सबसे ऊँचा। इसकी चोटी से पचीस मील दूर ताज और भरतपुर का किला दिखाई पड़ जाता है। इसे बनाने के चार-पांच साल बाद ही अकबर मर गया था।

४. दिल्ली

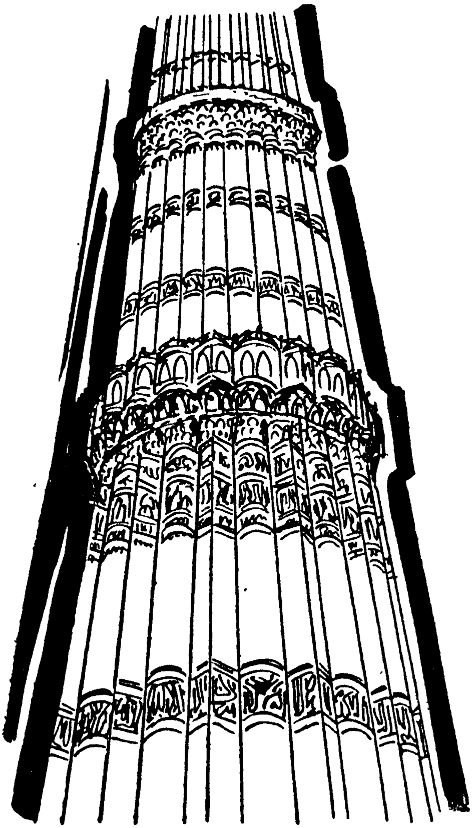
आगरा और दिल्ली का वैभव ज्यादातर मुगलों का है। वैसे तो दूसरे राजाओं और बादशाहों ने भी वहाँ अपने भवन और महल खड़े किये, मुगलों के ही अधिकतर बच रहे हैं, और सुन्दर और शालीन वही हैं भी। दिल्ली सात-आठ बार गिरी-बनी है और उसमें एक से एक बढ़कर महल समय-समय पर बनते रहे हैं, पर हम यहाँ दूसरी इमारतों का जिक्र न कर केवल कुतुब मीनार और शाहजहाँ की बनवाई जामा मस्जिद और किले का ही करेंगे।

कुतुब की लाट इस देश की सभी इमारतों से ऊँची है, विदेशों में भी इतनी ऊँची इमारतें कम हैं। इसकी कुल ऊँचाई २३८ फुट है। मंजिलें इसमें पाँच हैं, पहली ६५ फुट ऊँची है, दूसरी ५१ फुट, तीसरी ४१ फुट, चौथी २५ फुट और पाँचवीं २२ फुट ऊँची है। लाट अत्यन्त सुन्दर

है और लगता है जैसे जमीन से यकायक निकल कर आसमान चीरती चली गई है। भारत के गौरव की इमारतों में इस कुतुब की लाट का भी स्थान है। इसकी बनावट भी सुन्दर और दर्शनीय है।

इसके बनाने में तीन-तीन बादशाहों का हाथ लगा है। कुतुबुद्दीन ऐबक का, अल्तमश और फ़ीरोजशाह तुग़लक का। शायद कुतुबुद्दीन ने इसे अपनी किसी विजय की यादगार में खड़ा करने का मन्सूबा बाँधा था। पर पहली मंज़िल बनने के बाद ही वह इस दुनिया से चल बसा। अगली तीन मंज़िलें उसकी, गुलाम वंश के बादशाह अल्तमश ने तैयार कराईं। पाँचवीं मंज़िल लाट के आरंभ होने के करीब डेढ़ सौ साल बाद बनी। उसे फ़ीरोजशाह तुग़लक ने १३६८ ई० में बनवाया। उस साल बिजली गिर जाने से लाट का ऊपरी हिस्सा कुछ टूट गया था, सो उसकी मरम्मत कराते वक्त फ़ीरोज़ ने चौथी मंज़िल को कुछ छोटी कर एक नई पाँचवीं मंज़िल भी जोड़ दी। उसने पत्थर भी दूसरे इस्तेमाल किये। पहले की मंज़िलें लाल पत्थर की बनी थीं। उसने नई मंज़िल में सफेद पत्थर लगवाये।

कुतुबमीनार की मरम्मत १५०३ ई० में फिर हुई जो सिकन्दर शाह लोधी ने कराई। १८०३ में जो भूचाल आया उससे फ़ीरोज़शाह की बनवाई ऊपर की छतरी टूट



कुतुब मीनार

गई। पचीस बरस बाद अंग्रेज़ सरकार ने भी इसकी मरम्मत कराई और ऊपर एक नई छतरी चढ़ा दी, पर लाट से मेल न खाने के कारण १८४८ ई० में उस छतरी को

बिल्कुल उतार ही दिया गया।

लाट के भीतर घुमावदार सीढ़ियां बनी हैं, जिस से ऊपर उसके सिरे तक लोग चढ़ जाते हैं। चार छज्जे चक्करदार इसके चारों ओर दौड़ते चले गये हैं। इन छज्जों की बनावट बिलकुल हिन्दू शैली की है। इसके टोडे और घुड़ियाँ हिन्दू इमारतों के तरीके पर बनी हैं। ऐसे ही सब से निचली मंज़िल पर चारों ओर घण्टों और जंज़ीर की बनावट है। यह मंज़िल सितारे की शक्ल की है। इसकी बाहर चिनाई में एक के बाद एक गोलाकार और एक तिकोना तरीका काम में लाया गया है। दूसरी मंज़िल पर आधे चक्र बनते चले गये हैं, तीसरी पर त्रिकोण, बाकी दो मंज़िलें बेलन के आकार की लम्बी गोल हैं।

कहते हैं कि यह स्तम्भ पहले राजपूत राजाओं ने शुरू किया था। फिर अपना राज चले जाने पर वह भी बनते-बनते रह गया। पर यह विश्वास शायद लोगों को नीचे की मंज़िल की हिन्दू शैली को देखकर बना है। पर उसका कारण यह है कि पुरानी सारी मुस्लिम इमारतें दिल्ली, बंगाल, गुजरात, और दकन में हिन्दू-मुस्लिम दोनों शैलियों के मिश्रण से बनी हैं। उन्हें हिन्दू कलावन्तों ने बनाया है और जो बनाया है वह इस्लाम की सेवा के लिये है, चाहे वह मस्जिद है चाहे मकबरा। बनाया इस लाट को मुसल-

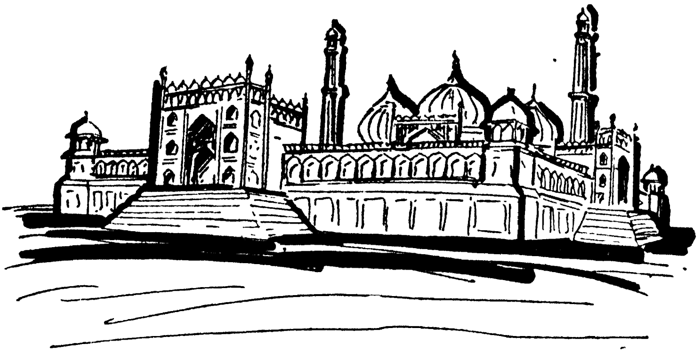
मान बादशाहों ने ही। पास की मस्जिद से भी इस मिली-जुली शैली का सबूत मिल जाता है।

कुतुबमीनार दिल्ली के पास ही पृथ्वीराज की दिल्ली में—मेहरौली गाँव के निकट बनी है। वहीं चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का बनवाया लोहे का स्तम्भ भी आज क़रीब डेढ़ हज़ार बरसों से आँधी-पानी में खड़ा है, उसकी विजयों का लेख अपने तन पर धारे। कुतुब की मीनार कुछ अजब नहीं, जो दिल्ली में मुसलमानी सल्तनत कायम होने की यादगार में बनी हो। है बड़ी दर्शनीय मीनार यह, दुनिया की मीनारों में नायाब, हिन्दू-मुस्लिम कला का एकजाई नमूना।

५. जामा मस्जिद

जामा मस्जिद : यह मस्जिद संसार की सुन्दरतम मस्जिदों में गिनी जाती है। शाहजहाँ ग़ज़ब का कला-पारखी और महान् निर्माता था। उसकी बनाई इमारतों का जोड़ दुनिया में नहीं है। उसने अपनी इमारतें तभी बनवाईं; जब फ्राँस के अपने बसाये नगर वर्साई में चौदहवाँ लुई अपने महल खड़े कर रहा था। दोनों की इमारतें अपनी-अपनी जगह पर असाधारण हैं, पर दोनों में मुकाबला कैसा? ताज की जोड़ की चीज़ इस ज़मीन पर दूसरी कहाँ है? वह तो दुनिया के सात अचरजों में गिना जाता है।

जामा मस्जिद भी शाहजहाँ की ही बनवाई हुई है, जो उसी के बनवाये दिल्ली के लाल किले के पास ही आलीशान खड़ी है। वह १६५० ई० में बननी शुरू हुई और ६ साल में बनकर तैयार हो गई। ५००० संगतराशों,

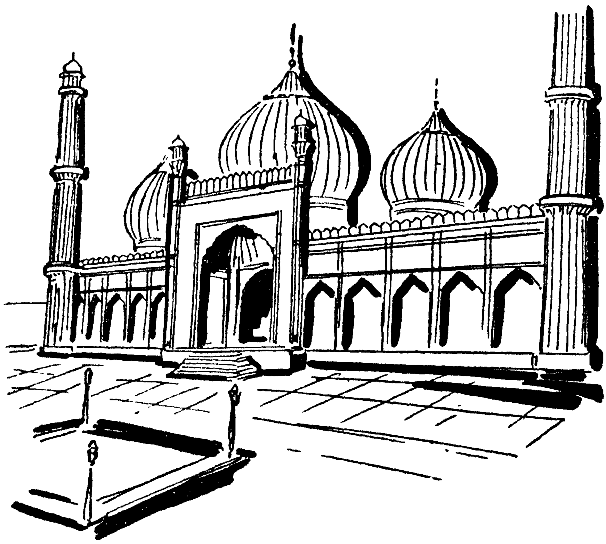


दिल्ली की जामा मस्जिद

मजदूरों और राजों ने उसे बनाया। बनाने में करीब दस लाख रुपये ख़र्च हुए थे, फिर उस काल के रुपये जिनकी क्रयशक्ति आज के रुपये से कुछ नहीं तो बीस गुना अधिक थी। इसकी ज़मीन को भोजला पहाड़ी कहते हैं। नीची पठार को बराबर कर मस्जिद उस पर बनाई गई, किले के दिल्ली दरवाजे के सामने ज़रा हटकर जहाँ दरवाजे के बाहर के हाथीख़ाने से सड़क जाती थी और सड़क के दोनों ओर दुकानें चली गई थीं। अब वहाँ दुकानें नहीं रहीं, वहाँ एक लम्बा-चौड़ा मैदान है।

समूची मस्जिद लाल पत्थर की बनी है, गुम्बज सफेद पत्थर के बने हैं। बीच-बीच में कंठ से कलश तक जगह-जगह काले पत्थर की पटियाँ जड़ दी गई हैं। मस्जिद का सहन ४०० फुट का वर्गाकार है। उसके बीचों बीच एक

संगमरमर का हौज़ बना है, हौज़ में फ़व्वारा है। पच्छिम की तरफ़ नमाज पढ़ने के लिये एक बड़ा दालान है। बाकी तीन तरफ़ भी लम्बे दालान हैं। हर दालान में एक दरवाज़ा है; पूरबी दालान का दरवाज़ा बहुत बड़ा है, बहुत ऊँचा।



जामा मस्जिद का भीतरी भाग

मस्जिद पर तीन बड़े सुन्दर गुम्बज बने हैं। बीच का बड़ा है, दायें-बायें के कुछ छोटे हैं। दोनों सिरों पर दो पतली मीनारें हैं, आठ पहल, १३० फुट ऊँची। इन पर चढ़नेके

लिये भीतर से सीढ़ियां बनी हैं। पूरबी दालान के सिरों पर बड़ी-बड़ी छतरियां हैं, दरवाज़ों के ऊपर सफ़ेद पत्थर की छोटी-छोटी बुर्जियां हैं। त्योहारों पर इस मस्जिद में हज़ारों की भीड़ हो जाया करती है, लाख-लाख तक की।

६. लाल क़िला

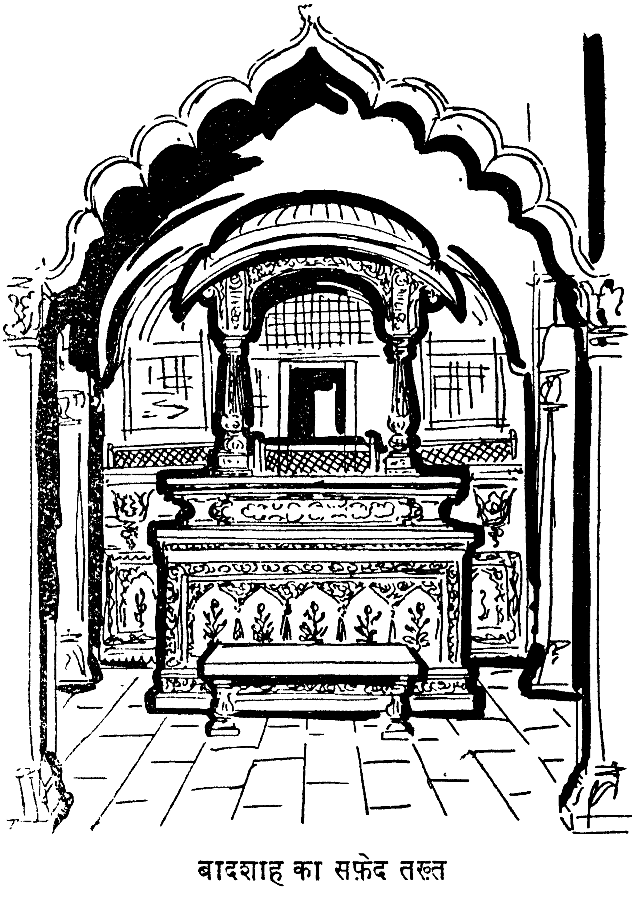
लाल क़िला : लाल क़िला भी शाहजहाँ का ही बनवाया हुआ है। उसने एक बार आगरा छोड़कर दिल्ली को अपनी राजधानी बनाने का निश्चय किया था। उसके लिये महलों की ज़रूरत थी और ऐसे महलों की जिनमें शाहजहाँ का-सा कला-पसन्द रह सके। और इन महलों की रक्षा के लिये क़िले की ज़रूरत थी और शाहजहाँ ने १६३८ ई० में लाल पत्थरों का अपना वह दिल्ली का मशहूर क़िला बनवाना शुरू किया। नौ साल बाद, उसके गद्दीनशीन होने के बीसवें बरस यह क़िला बनकर खड़ा हो गया। बारह-बारह गज़ की दीवारें अपने कलश-कंगूरों के साथ, नाज़ुक बुर्जियों के साथ तैयार हो गईं। दो प्रधान द्वार—दिल्ली दरवाज़ा और लाहौरी दरवाज़ा खुल गये, तिमंज़िले द्वार, खूबसूरत बुर्जियों से लैस।

महल जमुना की तरफ़ वाली दीवार के सहारे बने,

जिससे नदी का दृश्य सामने रहे, जिससे आगरे की गरमी से कुछ नजात मिले। इस गरमी से बचाव के लिये महलों के नीचे तहख़ाने भी बना लिये गये। सामने की दीवारों के किनारे-किनारे खाई दौड़ा दी गई और उसे जमुना के पानी से भर दिया गया। ऊपर उठाऊ लकड़ी का पुल डाल दिया गया।

फाटक से घुसने के बाद लालपत्थर का ऊँचा दरवाज़ा है। उसके ऊपर का दालान नौबतख़ाना था जहाँ नौबत बजा करती थी। इस नक्कारख़ाने के पीछे चौक है जिसमें विशाल दीवाने-आम आज भी शानदार खड़ा है। तीन दरों का बड़ा दालान, लाल खंभों पर टिका, पानदार मेहराबों से सजा। कभी उन पर सुनहरी नक्काशी थी। खम्भे, फ़र्श और दीवारें सुनहरी-रुपहली लटकनों, बेशकीमती किमख़ाबों और नरम ग़लीचों-कालीनों से ढक दी जाती थीं। बाहर शामियाने में अमीर-उमरा खड़े होते थे।

पिछली दीवार से लगा बादशाह का सफ़ेद तख़्त है, तोरणदार, ऊँचा। उसकी पीठ पर एक से एक सुन्दर बेल-बूटे कटे हुए हैं। तख़्त के सामने के हिस्से में वजीर आदि के खड़े होने-बैठने का इन्तजाम आगरे के क़िले का-सा ही था। इसी दीवाने-आम में संसार प्रसिद्ध शाहजहाँ का तख़्तेताऊस रहता था जिसे नादिरशाह ईरान उठा ले गया।

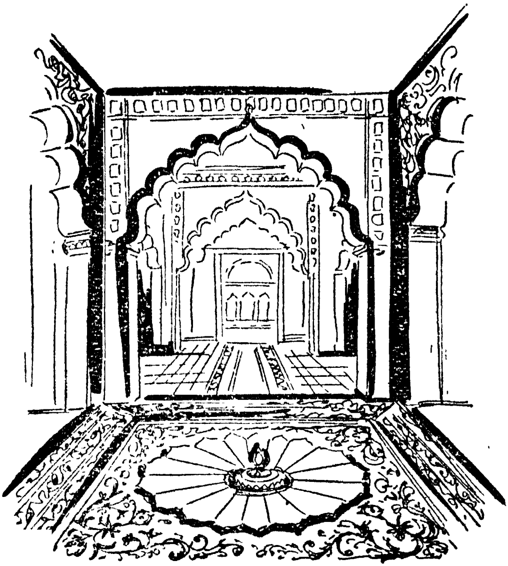


बादशाह का सफ़ेद तख़्त

दीवाने-ख़ास : दीवाने-ग्राम के पीछे दीवाने-ख़ास का सहन है श्रौर उसके दायें-बायें शाही महल है। इस सहन को 'जल्वाख़ाना' कहते थे। दीवाने-ख़ास की समूची इमारत

सुन्दर संगमरमर की बनी है। इसके खम्भों के ऊपर बेल-बूटों से सजी सुनहरी पत्तर चढ़ी हुई थी और उन पर टिकी छत चान्दी की चद्दरों से ढकी थी। १७६० ई० में मरहठा सरदार सदाशिव राव भाऊ ने उस चान्दी की छत को उतरवा कर उससे सत्रह लाख सिक्के ढलवा लिये थे। दीवाने-ख़ास की शक्ल बारादरी की है। इनमें से एक दरवाजे के मेहराब पर लिखा है—'इस धरती पर अगर कहीं स्वर्ग है तो यहीं है, यहीं है, यहीं है।' है सच ही धरती पर यह स्वर्ग।

दीवाने-ख़ास के दोनों तरफ़ नदी की ओर शाही महल बने हैं। दक्खिन की ओर ख़ाबगाह, मुसम्मन बुर्ज, बैठक और रंगमहल, शाहबुर्ज आदि हैं। रंगमहल दीवाने-आम के ठीक पीछे सबसे बड़ा है। सामने कभी बाग था जिसमें फ़व्वारे छूटते रहते थे, नहरें बहती थीं। रंगमहल भी सफ़ेद पत्थर का बना है, बीच में सफ़ेद पत्थर का ही कमल-सा कटा जलाशय है। यहाँ से पानी बहकर हयात बख़्श बाग़ में झरने के रूप में गिरता था। इस महल की छत भी चाँदी की थी, जिसे उतरवा कर फर्रुख़सियर ने ताम्बे की लगवा दी, फिर वह भी जब अकबर सानी को न रुची तो उसने उसे भी उतरवा कर उसकी जगह लकड़ी की लगवा दी। रंग-महल बेगमों का ज़नानख़ाना था, इससे उसके दोनों तरफ़ परदे के लिये जालियाँ बनी थीं; नीचे तहख़ाने थे।



सफेद पत्थर का कमल-सा कटा जलाशय

क़िले की दूसरी इमारतों में प्रधान हम्माम, मोती मस्जिद, सावन-भादों और हयात बख़्श बाग़ हैं। हम्माम में कई कमरे हैं। इनका फ़र्श ग़ज़ब की पच्चीकारी से कालीन का-सा कर दिया गया है। कमरों के बीच-बीच में नहाने के लिये कुंड बने हुए हैं। उनमें कभी अनेक रतन जड़े थे और सैकड़ों फ़व्वारे छूटते रहते थे। बीच के कमरे में एक नहर बहती थी जिसके नीचे ऐसा कटाव था कि पानी बहने पर लगता था कि नीचे मछलियां तैर रही हैं।

मोती मस्जिद अत्यन्त स्वच्छ-सुन्दर छोटी-सी मस्जिद है, चान्दी-चूने से पुती, बिलकुल मोती-सी सफ़ेद। पास के मोती महल के पच्छिम ५०० फुट वर्गाकार हयात बाग़ था। बाहर नहर बहती थी। भीतर के संगमरमर के मंडप के बीच जो चौकोर कुण्ड बना है, उसमें सुराख कुछ ऐसे बने हैं कि जब नहर का पानी उनसे झरता था तब सावन की झड़ी का दृश्य सामने आ जाता था। इसी से उसका नाम ही 'सावन' पड़ गया था। उधर दूसरी ओर की बनावट से पानी कुछ ज्यादा गिरता है और भादों के बादल जैसे बरसने लगते हैं। सावन-भादों के बीच लाल पत्थर का एक जलाशय है, जिसके आर-पार नहर बहती थी। नहर की राह में थोड़ी-थोड़ी दूर पर फ़व्वारे बने हुए हैं। जलाशय के बीच बहादुर शाह का बनवाया ज़फ़र-महल है।

७. दिलवाड़ा

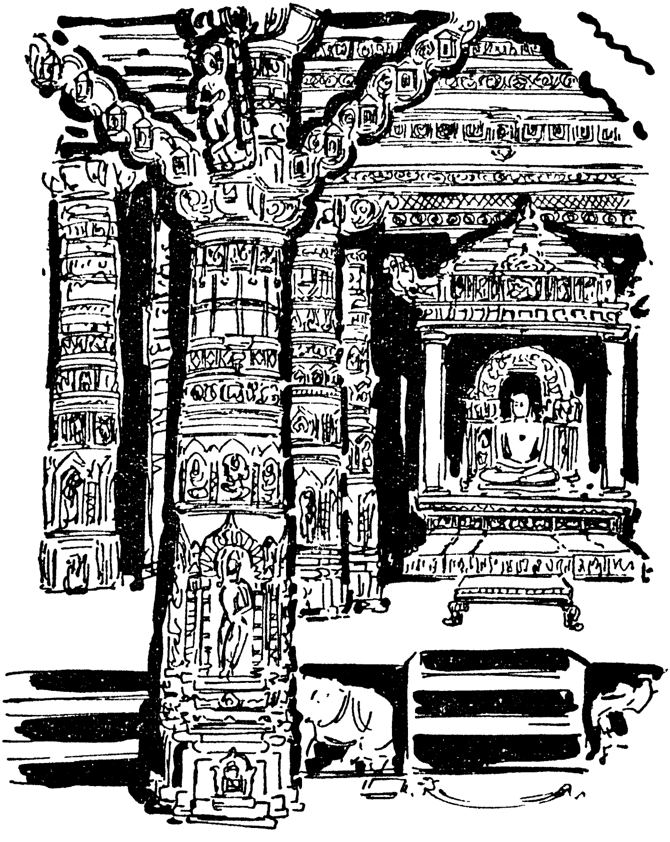
दिलवाड़ा : पच्छिमी राजस्थान में दिल्ली से गुजरात जाने वाली राह पर अजमेर और अहमदाबाद के बीच आबू का पहाड़ है। है तो वह अरावली पहाड़ों का ही एक भाग पर सिलसिले से अलग अकेला पहाड़ ४,५०० फुट ऊँचा उठता चला गया है। कहते हैं कि चौहान आदि चार राजपूत कुलों की उत्पत्ति वहीं हुई। कुछ काल तक वह अन्हिलवाड़ के चालुक्यों के हाथ में रहा; फिर बघेलों और चौहानों के। चौहानों ने वहीं से दिल्ली जीती थी। सदियों वह मेवाड़ के राणाओं के राज में रहा था, फिर मुग़लों ने उस पर अधिकार कर लिया था।

उसी आबू पर दिलवाड़ा में जैनों के दो महान् मन्दिर संगमरमर के बने हुए हैं। आज से कोई हज़ार साल पहले ग्यारहवीं और बारहवीं सदी में वे बनकर तैयार हुए थे। जहाँ

तक पत्थर में बारीक कटाव और डिज़ाइनों की अनन्तता और बारीकी का सवाल है उनका-सा मन्दिर इस देश में दूसरा नहीं है। मन्दिर के भीतर दीवारों पर, छतों में, खंभों पर तनिक जगह नहीं है, जहाँ पत्थर को काट-कोरकर कोई अलंकार, कोई डिज़ाइन न बनी हो।

डिज़ाइनों-आकृतियों का तो यह हाल है कि आंखें देखती थक जाती है पर उनका सिलसिला नहीं थकता, उनके दृश्य नहीं चुकते। जैसे शाम के आसमान में तारे एक के बाद एक देखने वाले की नज़र में उठते चले आते हैं वैसे ही आँख डालते ही ये डिज़ाइनें एक के बाद एक अनंत नज़रों में सरकती चली आती हैं। वैसे तो ज्यादातर जैन मन्दिरों की खूबसूरती उनके काम की महीनी और बरीकी में है, इन मन्दिरों का काम तो ऐसा है कि इनकी तुलना ही किसी और मन्दिर से नहीं की जा सकती। इनकी मूरतों के नाक-नक्श तीखे हैं जैसे धातु के बने हुए हों। इन विशाल अचरज के मन्दिरों को किसने बनाया?

दसवीं सदी के बीच आबू पर चन्द्रावती के चालुक्य राजाओं का राज था। इन राजाओं का मूल परिवार गुजरात में अन्हिलवाड़ का था। चन्द्रावती के खंडहर नीचे दक्खिन की ओर मैदान में आज भी देखे जा सकते हैं गो उनके पत्थर रेलवे के निर्माण के लिये बड़ी बेमुरव्वती से



दिलवाड़ा का मन्दिर

नींव तक उखाड़ लिये गये हैं। वहीं के राजा भीमदेव प्रथम के समय दिलवाड़ा का पहला प्रसिद्ध मन्दिर बना था। आबू पर उस समय स्थानीय राजा धन्दू का राज

था। वह भीमदेव का सामन्त था। उसके ऊपर राजद्रोह का शक करने के कारण भीमदेव ने अपने मन्त्री विमल को आबू का गवर्नर बना दिया था। उसी विमल ने इस पहले मन्दिर को बनाने का ख़र्च दिया और यह मन्दिर भी उसी के नाम से प्रसिद्ध हुआ। १०३१ ई० में इसमें पहली बार पूजा हुई।

भीमदेव प्रथम का तीसरा वारिस कुमारपाल स्वयं जैन हो गया। उसी के मन्त्री चाहुदेव ने अगले राजा भीमदेव द्वितीय से तेजपाल और वस्तुपाल का परिचय कराया। तेजपाल और वस्तुपाल दोनों भाई थे, जो भीमदेव के मन्त्री बन गये और उन्होंने ही १२३० ई० से १२३६ तक सात साल में अनन्त धन लगाकर दिलवाड़ा का दूसरा महान् मन्दिर बनवाया। दोनों भाई चालुक्य राजकुल के नष्ट हो जाने पर नये बघेल राजा के भी मन्त्री बने रहे और उसका ख़ज़ाना भी उन्होंने अपने उचित शासन से भरा। कहते हैं कि एक नागर ब्राह्मण की साजिश से उनकी जान पर आ बनी, पर कवि सोमेश्वर ने राजा से कहकर उनकी जान बचाई।

इनमें पहला मन्दिर विमल का बनवाया जैन तीर्थंकर आदिनाथ का है, दूसरा तेजपाल-वस्तुपाल का बनवाया तीर्थंकर नेमिनाथ का है। इनके अलावा दूसरे तीर्थंकरों की मूर्तियाँ भी जहाँ-तहाँ हैं। मन्दिर ऊँची दीवारों से घिरे

हुए हैं। साधारण हिन्दू मन्दिर दूर तक फैले मैदानों में बने हैं, पर ये जैन मन्दिर दीवारों से घिरे होने के कारण इतने अनोखे और विशाल होते हुए भी सामने सहन के अभाव से दूर से आँखों पर दूसरे मन्दिरों का-सा प्रभाव नहीं डालते। हाँ, भीतर एक बार घुस जाने पर मन्दिरों के काम दर्शक के ऊपर छा जाते हैं। कितना समय, कितनी कला, कितना धन इनके बनाने में ख़र्च किया गया है, यह कहने की बात नहीं है। पत्थर को जैसे मिट्टी बनाकर कलावन्त मूरतें सिरजते चले गये हैं। दिलवाड़ा के मन्दिर अपने तरह की कला में बेजोड़ हैं।

८. उड़ीसा के मन्दिर

उड़ीसा के मन्दिर : भारत तो मन्दिरों का जंगल है। इसमें न तो मन्दिरों की संख्या का कोई अन्त है न उनकी सुघराई का कोई मान। दोनों अपार हैं। जितनी श्रद्धा इस देश में थी, जितनी कला थी, जितना धन था, उसका भरपूर इस्तेमाल इन मन्दिरों की बनावट में किया गया—कश्मीर-हिमालय की चोटी से कुमारी अन्तरीप तक, सागर से सागर तक।

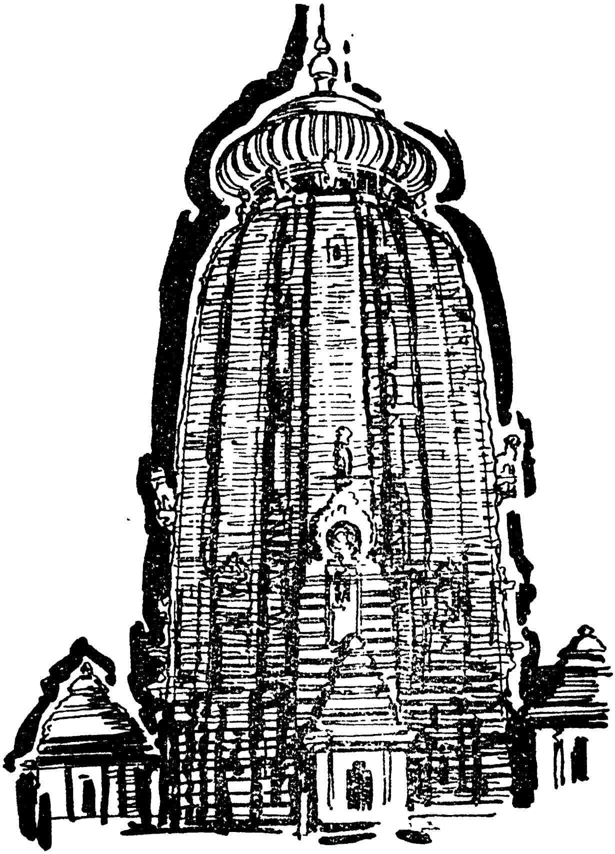
फिर भी उड़ीसा के मन्दिरों की अपनी जात है, दूसरे मन्दिरों से बिलकुल अलग। वैसे तो वहाँ सातवीं सदी से ही मन्दिर बनने लगे थे और तेरहवीं-चौदहवीं सदी तक लगातार बनते रहे थे, पर ग्यारहवीं सदी से तेरहवीं सदी तक करीब दो सौ साल तो इस देश के लिये विशेष महत्व के रहे हैं। उस बीच लगातार राजों-कलावन्तों की छेनी

जड़ पत्थर से टकराती रही है और एक से एक सजीव, एक से एक नयनाभिराम मन्दिर अपनी अनगिनत मूरतों के साथ खड़े होते गये हैं। इन्हीं में भुवनेश्वर के लिंगराज, कनारक के सूर्य और पुरी के जगन्नाथ मन्दिर भी हैं।

उड़ीसा में पुरी का जिला मन्दिरों में बड़ा उदार है। जैसे उसका सागर बालू के तोर पर अनन्त सीपी बिखेरता है वैसे ही वहाँ की ज़मीन अच्छा पत्थर उगलती है। उसी पत्थर से उड़ीसा के ये प्रसिद्ध मन्दिर बने हैं। इन मन्दिरों में सब से विशाल लिंगराज का शिव मन्दिर है। यह भुवनेश्वर में है। भुवनेश्वर में अब उड़ीसा की राजधानी बन रही है।

भुवनेश्वर के मन्दिरों की कोई गिनती नहीं है। वे कई सौ हैं। उनके ऊपर बाहर की ओर नंगी भोग में लगी सैकड़ों मूरतें बनी हैं। इन मूरतों की खूबसूरती और मन्दिरों की बनावट की तारीफ़ लिखी नहीं जा सकती। वह बस देखने की चीज़ है। उनमें सबसे ऊँचा लिंगराज का मन्दिर ग्याहरवीं सदी के शुरू में बना था। उसका वर्गाकार मंडप काफी ऊँचा है और इसका शिखर तो बस आसमान चीरता दूर ऊँचा चला गया है। शिखर की रेखाएँ सीधी हैं, केवल चोटी पर जाकर वह मुड़ी हैं।

कहते हैं कि मन्दिर को चाहे जितना भी सुन्दर बनाओ



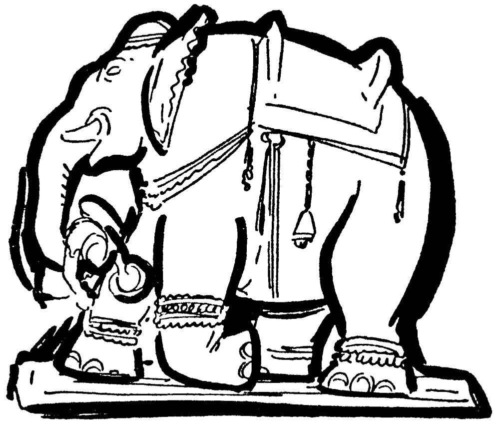
भुवनेश्वर का लिंगराज मन्दिर

वह किताबों में लिखे नमूने से घटकर ही होगा। पर यह लिंगराज का मन्दिर किताबी नमूनों से भी बढ़ गया है।

इसका उतार-चढ़ाव, इसका दमख़म, इसकी लोच अपना सानी नहीं रखती—जैसे साँचे में ढाल दि गयेये हैं ।

सालों लगे थे इसके बनने में। इस पर लाखों व्यय हुआ था। हज़ारों मज़दूरों ने इसके बनाने में अपना पसीना बहाया था। तब जाकर कहीं यह अद्भुत मन्दिर खड़ा हुआ, तब इसका शिखर इतना उठा कि बादलों में खो गया। इस मन्दिर को उड़ीसा के राजा केसरियों ने बनवाया। केसरियों ने और कुछ नहीं किया। बस मन्दिर ही बनवाये। चालुक्यों-चोलों ने उन्हें लूटा, पालों-सेनों ने उन्हें मार-मार कर बेदम कर दिया, पूरबी गंग राजा तो उन्हें निगल ही गये। पर केसरी राजा मन्दिर बनवाते रहे, भुवनेश्वर के मन्दिरों को, खासकर इस लिंगराज मन्दिर को, बनाकर वे अमर हो गये।

इसी तरह कनारक का सूर्य का मन्दिर भी महान् है। समुन्दर के किनारे बालू की ज़मीन पर खड़ा है, सदियों खड़ा रहा है, अकेला। समुन्दर की नमकीन हवा इसके उस पंजर में नमी भरती रहती है जो कभी पूरा नहीं बन सका था और सदियों की अपनी नोनी मार से सागर की हवा ने उसे जर्जर कर दिया है। पर जो कुछ उस मन्दिर का बच रहा है, वह भी इतना बताने के लिए काफ़ी है कि उसका-सा देश-विदेश में कुछ भी नहीं। क्या ख़ूबसूरती, क्या



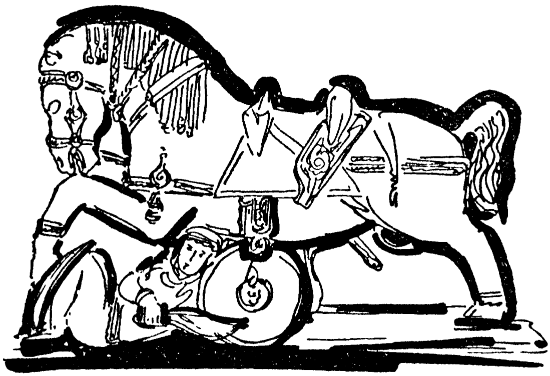
कोणार्क मंदिर की एक सजीव मूर्ति

मूरतों की सजीवता, क्या सिरजन की कला; सभी बातों में वह बेजोड़ है, मन्दिरों की इमारती कला में लासानी।

सूरज का मन्दिर होने से इसका नाम कोणार्क या कनारक पड़ा। उसे 'काला पगोडा' भी कहते हैं। भारत में सूरज के मन्दिर कम ही बने, जैसे कश्मीर में मार्तण्ड का, बहराइच में बालार्क का, वैसे ही यह उड़ीसा में कनारक का। इसकी बाहरी दीवार डेढ़ सौ गज़ लम्बी, सौ गज़ चौड़ी है। इसके शिखर की ऊँचाई लिंगराज और जगन्नाथ के शिखरों से कम है। पर इसकी विशेषता इसके शिखर की ऊँचाई में नहीं, इसकी चौड़ाई और पगोडा शैली में है, इसकी सजीव मूरतों में, इसके बहते जीवन की धारा में है। यह

शिखरदार नहीं चौपहल इमारत है, छतरीदार, एक के ऊपर एक, थोड़ी-थोड़ी दूर पर, छः छतरियां, और एक-एक छतरी पर छः-छः और।

इसमें ग्रहों की मूरतें बनी हैं। वे अकेली-अकेली भी ग़ज़ब की हैं, साथ-साथ भी उनकी सजीवता जैसे बहती धारा है। इंच-इंच से ज़िन्दगी जैसे पेंग मारती है। सूरज के रथ के घोड़े बस देखने ही लायक़ हैं, उनका वर्णन नहीं हो सकता। इतनी ताक़त इतनी, तेज़ी है उनमें कि लगता है



सूरज के रथ का एक घोड़ा

उनको पकड़े खड़ा सईस उन्हें सम्हाल नहीं पाता। लगता है हवा में वे उड़ चलेंगे। उनके खुर, पुट्ठे, नथने सभी जैसे फड़फड़ा रहे हैं, पत्थर का रथ स्वयं जैसे सचल है, गतिमान। उसके चक्के, उनकी धुरी, उनके अरे, सभी चलते-से लगते

हैं। कलाकार जैसे विश्वकर्मा बन गया है, मूरत पर मूरत अपनी जादू की छेनी से कोरता चला गया है।

कनारक के मन्दिर को केसरी कुल के राजा नरसिंह ने तेरहवीं सदी में बनवाया था। मन्दिर पूरा बन न सका था और किसी कारण अधूरा ही छोड़ दिया गया था; पर जो है वह भी अच्छे से अच्छे मन्दिर से खूबसूरत है। अकबर के दोस्त और मन्त्री और कलापारखी अबुल फ़ज़ल ने इस मन्दिर की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। मन्दिर अपनी समूची आकृति को पाकर अपनी आखिरी लुनाई से चमके हैं, पर यह कनारक का मन्दिर अधूरा ही, बगैर कलाकार की आखिरी परस पाये ही अमर हो गया है।

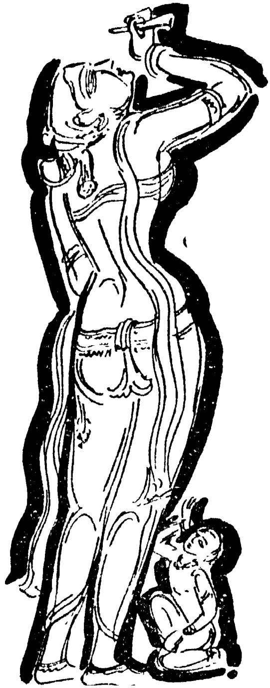
कहते हैं, पुरी—जगन्नाथ का मन्दिर एक धोखा है, क्योंकि कला के विचार से कनारक और लिंगराज के मन्दिरों के सामने वह कुछ भी नहीं है। जितने ही महान् कला की नज़र से वे हैं उतना ही अकिंचन यह है। पर यह आज भी जीवित है, आज भी उस पर चढ़ावा चढ़ता है, आज भी वह मन्दिर भारत के कोने-कोने से जात्री खींचता है। उसका तीरथ किये बिना कोई श्रद्धावान हिन्दू नहीं मरता। कला के पारखियों का विचार है कि उसके बनवाने वाले राजाओं ने इसी चढ़ावे के लिये उसकी पवित्रता का प्रचार किया और प्रचार के कारण ही उसे इतनी ख्याति मिली।

केसरियों को जीतने वाले दक्खिन के गंग परिवार के राजा अनन्त वर्मन चोड़गंग ने पुरी का यह मन्दिर बनवाया। वैसे है यह भी भुवनेश्वर के मन्दिरों की ही शक्ल का बना, पर कला के विचार से यह, जैसा कहा जा चुका है, काफ़ी घटिया है। इसका शिखर १६० फुट ऊँचा है और रथ यात्रा के दिनों में इसकी महिमा बेहद बढ़ जाती है। लाखों जात्री वहाँ जाते और उसके रथ को खींचते हैं। कभी उसके रथ के पहियों के नीचे दबकर मर जाना स्वर्गारोहण का साधन माना जाता था और अनेक उसी से कुचलकर अपनी सद्गति बनाते थे।

इसके देवता जगन्नाथ की विशेष महिमा है। जगन्नाथ विष्णु के वह अवतार माने जाते हैं जो बुद्ध में हुआ था। बुद्ध ने जात-पाँत को धिक्कारा था। इससे इस मन्दिर के आँगन में भी जात-पाँत नहीं मानी जाती और डोम और ब्राह्मण एक दूसरे का छुआ प्रसाद पाते हैं। इस विचार से यह मन्दिर बहुत अच्छा है। इसके देवता की मूर्ति और मन्दिरों के देवताओं की तरह पत्थर की नहीं लकड़ी की बनती है और हर साल सागर में बहा दी जाती है।

उड़ीसा के इन मन्दिरों का असर भारत के दूसरे मन्दिरों पर भी पड़ा। बुन्देलखण्ड के चन्देल मन्दिर भी अधिकतर इनकी शैली में ही बने। उनका रूप भी उन्हीं की

तरह सिरजा गया, उनकी मूरतें और बाहरी भाग के दृश्य भी वैसे ही बने। खजुराहो के मन्दिर भी देश के सुन्दरतम मन्दिरों में गिने जाते हैं। चन्देल राजाओं की राजधानी तो महोबा थी, पर धार्मिक राजधानी उनकी यहीं खजुराहो में थी। कला की सुन्दर से सुन्दर कृतियों से उन्होंने इस नगर को भरा-पुरा था। वहाँ भी भुवनेश्वर की ही तरह मन्दिरों की संख्या बड़ी है। करीब १००० ई० के बने वहाँ के विशाल और सुन्दर मंदिरों की संख्या बीस से अधिक है। इनमें कन्दरिया महादेव का मंदिर तो अनुपम है; उसकी शोभा बखानी नहीं जा सकती।



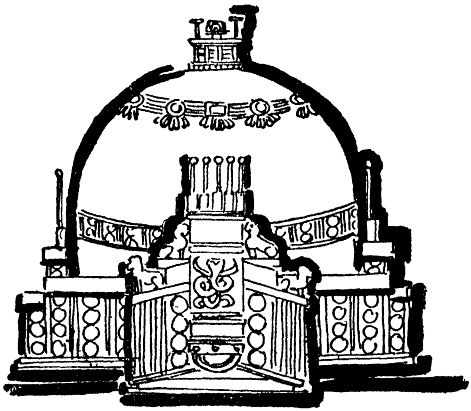
खजुराहो के मन्दिर की एक मूर्ति

९. भरहुत और साँची

भरहुत और साँची : उत्तर और दक्खिन भारत की ही भाँति मध्य भारत भी मंदिरों का धनी है। सच पूछिये तो वहाँ की अनेक इमारतें अत्यंत प्राचीन काल की हैं, आज से कोई दो हजार साल से भी पहले की बनी। इन्हीं में भरहुत और साँची के स्तूप हैं। भरहुत नागोद के पास है और साँची भोपाल के पास।

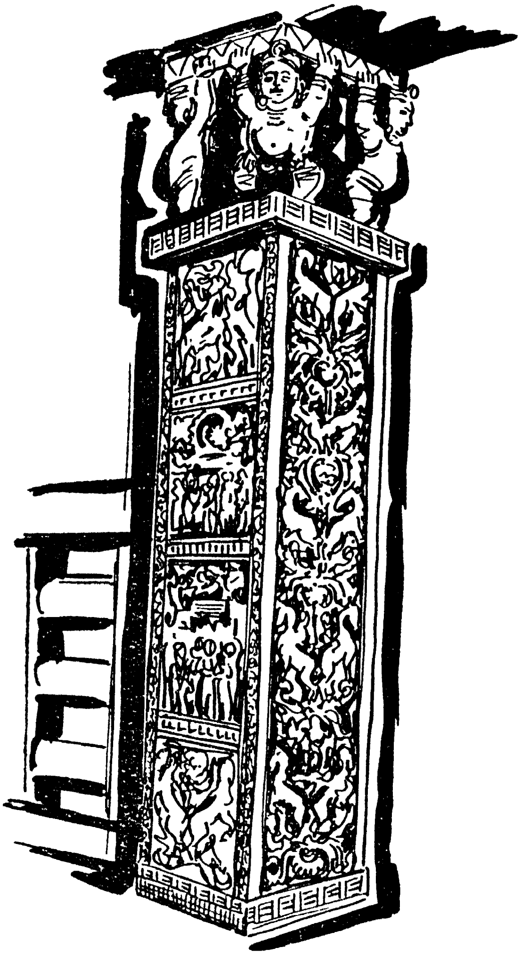
स्तूप मामूली तौर से ईंट-पत्थरों की ठोस इमारत होता है। तब वह बुद्ध या महावीर की किसी प्रसिद्ध घटना का यादगार होता है। एक प्रकार का स्तूप खोखला भी होता है जिसमें बुद्ध या उनके चेलों आदि की भस्म या हड्डियाँ रखी जाती हैं। भारत के सबसे प्राचीन स्तूप भरहुत, साँची और अमरावती के हैं। भरहुत नागोद के पास मध्य प्रदेश में है, साँची भी उसी प्रदेश में भोपाल के पास है और अमरावती आन्ध्र प्रदेश में कृष्णा नदी के दक्खिनी तीर पर है। इन स्तूपों

को अपनी-अपनी रेलिंगें हैं। इन रेलिंगों पर एक से एक सुन्दर मूरतें बनी हैं। साँची के स्तूप मौर्य काल में बने, अशोक के जमाने में, आज से कोई सवा दो हज़ार साल पहले। पर उसकी रेलिंगें करीब सौ-सवा सौ साल बाद बनीं। भरहुत की रेलिंगें साँची से कुछ पहले की हैं, अमरावती की बाद की। यहाँ हम साँची के स्तूप और तोरण की बात कहेंगे।



साँची का स्तूप

साँची के स्तूप करीब तीन सौ फुट ऊँची पहाड़ी पर बने हैं। उनमें से प्रधान ईंट का बना है ऊपर उसके पत्थर की पट्टियाँ बाद में जड़ दी गई हैं। उसका व्यास १२० फुट और ऊँचाई ५४ फुट है। और स्तूपों की ही तरह वह



रेलिंग पर खुदी मूर्तियां

भी अर्ध वृत्ताकार है, आधी कटी नारंगी की तरह गोल। चारों ओर चबूतरा दौड़ता है और दखिन ओर दो जीने हैं, मस्तक पर एक के ऊपर एक कई छतरियां बनी हुई हैं। फिर प्रदक्षिणा-भूमि है जिसमें चलकर स्तूप का चक्कर करते थे। और बाहर से पत्थर की अद्भुत रेलिगें हैं जिनके चारों दिशाओं में चार तोरण-द्वार हैं।

रेलिगों पर जो दुनिया बसाई गई है, उसका वर्णन कर सकना कठिन है। पत्थर में उभारे देवी-देवता, नाग-नागी, यक्ष-यक्षी बड़े सजीव हैं। बीच-बीच में गोल कटाव के भीतर नर-नारियों के नयनाभिराम मस्तक, कमल, खिले फूल, घड़ियाल, सिंह, हाथी, ऊँट, पक्षी, घोड़े और दूसरे जीव-जन्तु तराश कर बनाये हुए हैं। इनके तोरणों की सुघराई तो देखने ही लायक है। तोरण एक के ऊपर एक तेहरे बने हुए हैं। इन पर एक से एक सुन्दर मूरतें कोरी और उभारी गई हैं। जलूस आदि का चित्रण इतना सही हुआ है कि लगता है उसके आदमी-जानवर सभी गतिमान हैं। उस काल का जीवन स्तर इन रेलिगों और तोरणों पर लहरा उठा है। भरहुत की रेलिग के टुकड़े कलकत्ता के संग्रहालय में सुरक्षित हैं।

अमरावती का स्तूप तो आज से करीब बाईस सौ साल पहले बना। इसके ऊपर संगमरमर की पट्टियां हैं जिन पर

सैकड़ों सुन्दर आकृतियाँ खुदी हैं। ये पट्टियाँ स्तूप बनने के करीब तीन-चार सौ साल बाद जोड़ी गईं। इन पर उभारी नर-नारियों की मूरतें जितनी सुन्दर हैं उतनी सुन्दर आकार-प्रकार के विचार से कभी कहीं उस काल नहीं बनीं। इन पट्टियों के लोभ से वहाँ के जमींदारों ने प्रायः समूचे स्तूप को तोड़ कर नंगा कर दिया।

१०. दक्कन के गुफा-मन्दिर; अजन्ता और एलोरा

पत्थर और ईंट के मन्दिरों का तो इस देश में कोई अन्त ही नहीं है। एक से एक विशाल, एक से एक बड़े मन्दिर इसकी जमीन पर खड़े हुए, पर उनसे भी बढ़कर वे हैं जो पहाड़ को काटकर बनाये गये। सोचिये ज़रा, पहाड़ का दौड़ता हुआ सिलसिला और उसकी ठोस लोहे की-सी चट्टानी दीवार को काटकर खोखला कर देना, उसमें एक से एक मन्दिर-महल काट-बनाकर उनमें मूरतें गढ़ देना, उनकी दीवारों पर सुन्दर-से सुचित्र बना देना; यह भारत के ही भक्तों और कलावन्तों के बूते की बात थी।

बुद्ध के चेले दुनिया से अलग रहना चाहते थे। उन्होंने ही अपने रहने के लिये जंगल-पहाड़ों में रहने और पूजा के लिये एकान्त खोजे, और उनके धर्म में नेह रखने वाले राजाओं और सेठों ने उनके लिये जंगल में पहाड़ काटकर

रहने के लिये बड़े-बड़े हाल और समाधि लगाने के लिये छोटी-छोटी कोठरियाँ, पूजा के लिये विशाल मन्दिर बनवा दिये। अजन्ता और एलोरा के गुफा-मन्दिर इसी प्रकार पहाड़ों में कटे हुए हैं। ऐसे ही भाजा, कार्ले, कन्हेरी के भी, एलिफैंटा के भी। इनकी गहराई और बनाने की करामात देखकर दिमाग चकराने लगता है। आदमी अटकल लगा सकता है कि इनको बनाने में कितनी मेहनत लगी होगी, कितना पसीना बहा होगा, कितना धन ख़र्च हुआ होगा।

विन्ध्याचल के नीचे पच्छिम की ओर नकशे में दखिन को दौड़ती सह्याद्रि की पहाड़ियाँ चली गई हैं, उन्हीं में अधिकतर ये गुफा-मन्दिर कटे हैं। बम्बई प्रान्त में औरंगाबाद से थोड़ी ही दूर पर एलोरा की गुफायें हैं। और उनसे करीब ७५ मील पर अजन्ता की हैं, आज से कोई दो हज़ार साल पुरानी जिनमें चित्र हज़ार साल तक बनते गये हैं। पारिजात के पेड़ों की क़तारों के ख़त्म होते ही अजन्ता की गुफाओं का सिलसिला शुरू होता है। नीचे पतली नदी बहती है, ऊपर पहाड़ी दीवार में २६ गुफायें खुदी हैं जिनमें कई बौद्ध मन्दिर भी हैं। इनकी दीवारों पर जो बुद्ध के चित्र बने हैं, उनसे इन गुफाओं की सुघराई इतनी बढ़ गई है कि उनका-सा दुनिया में कहीं कुछ नहीं।

औरंगाबाद से थोड़ी ही दूर पर दौलताबाद के किले के

पास ही एलोरा के बौद्ध, जैन और हिन्दू गुफा-मन्दिर हैं। ये मन्दिर अधिकतर हिन्दुओं के, आज से कोई बारह सौ साल के बने। जैसे अजन्ता अपने चित्रों के लिये प्रसिद्ध है वैसे ही एलोरा अपनी मूरतों के लिये विख्यात है। प्रधान मन्दिर



एलोरा गुफा की मूरतें

वहाँ हिन्दुओं के हैं—दशावतार, रामेश्वर, सीता की नहानी, कैलास। कैलास तो गुफा-मन्दिरों में अचरज है। तीस लाख हाथ पत्थर काटा गया है। कितनी ही पौराणिक कहानियाँ उसमें मूरतों के जरिये लिखी गई हैं। उसके मोटे खम्भों पर ऐसी नक्काशी की हुई है कि लगता है कि कलावन्तों ने उन पर मोती-मानिक उतार दिये हैं। कैलास की इमारत दो-मंजिली है और उसकी दीवारों पर कटे दृश्य इतने सजीव हैं कि देखते ही बनता है। इसे राष्ट्रकूट राजाओं ने अनन्त धन व्यय करके बनवाया था। एलोरा में एक से एक लगे, पहाड़ में कटे, करीब तीन दर्जन मन्दिर हैं। इतने सुन्दर एक जगह गुफा-मन्दिर चीन के तुन-हुवांग को छोड़कर दुनिया में और कहीं नहीं बने।

एलोरा से कहीं प्राचीन भाजा का गुफा-मन्दिर है। भारत के गुफा-मन्दिर का आरम्भ भाजा से ही होता है। अशोक जब भारत पर राज कर रहा था तभी या उसके कुछ ही बाद यह मन्दिर बना था। भाजा की प्रसिद्ध गुफा पूना से बीस मील की दूरी पर ही है। उसमें रथ पर चढ़े सूरज और ऐरावत हाथी पर चढ़े इन्द्र की मूरतें बड़ी सुन्दरता से कटी हैं। समुन्दर से समुन्दर तक सारा दकन अशोक के बाद ही आन्ध्र सातवाहन राजाओं के राज में आ गया था। वहीं भाजा, कार्ले, कन्हेरी, एलिफैंटा, एलोरा,

अजन्ता, बादामी आदि के गुफा-मंदिर बने।

भाजा के पास ही कार्ले की गुफा है। आज से करीब दो हज़ार साल पहले की बनी है। गुफा क्या है मन्दिर है, बौद्धों का मंदिर, जो पहाड़ काटकर बनाया गया है। बौद्ध लोग अपने मंदिर को चैत्य कहा करते थे। अजंता, भाजा, कार्ले, कन्हेरी आदि की गुफायें अधिकतर चैत्य ही हैं। भाजा के चैत्य की मूरतें उतनी ही प्राचीन हैं जितनी वह गुफा। और सुन्दरता के विचार से तो वे इतनी मनोरम हैं जितनी किसी दूसरी गुफा नहीं। कार्ले का गुफा-मंदिर भारत के अमर मंदिरों में से है।

कन्हेरी की प्रसिद्ध गुफा बम्बई के पास ही है, करीब २५ मील की दूरी पर ही। इसी से वहाँ बम्बइया घुमक्कड़ों की भीड़ लगी रहती है। यह गुफा भी करीब-करीब तभी बनी थी जब कार्ले की बनी थी। उसमें भी सैकड़ों मूरतें अपनी दुनिया बसाये हुए हैं, यद्यपि सुन्दरता में वे कार्ले की मूरतों का मुक़ाबिला नहीं कर सकतीं।

एलिफैंटा बम्बई के बन्दरगाह के पास ही है, एक छोटे टापू पर खड़ा जहाँ लोग स्टीमर से जाया करते है। पहाड़ काटकर गुफा बनाई गई है। इसकी मूरतें भी एलोरा की मूरतों की ही तरह ईसा की सातवीं-आठवीं सदी में बनी थीं। गुफा-मंदिर शिव का है, अकेला। उसमें अधिकतर

शिव का परिवार ही मूर्तिमान हुआ है, कुल करीब एक दर्जन मूर्तियाँ हैं। इनमें प्रधान त्रिमूर्ति (ब्रह्मा, विष्णु, महेश), भैरव और गंगाधर की हैं। पर एलिफैंटा की मूरतों में ग़ज़ब की सुन्दरता है। कम गुफा-मंदिर ऐसे हैं जहाँ पत्थर में इतनी सुन्दर और सही आकृतियाँ कोरी और काटी गई हैं, जितनी इस एलिफैंटा के शिव-मंदिर में।

इस गुफा-मन्दिरों की परम्परा में दक्षिण भारत के महाबलिपुरम् के पहाड़ में कटे मन्दिर भी हैं। ये मन्दिर भी लगभग तभी बने जब एलिफैंटा और एलोरा के बने थे। दक्षिण में कभी पल्लव राजाओं का राज था। महाबलिपुरम् के ये प्रसिद्ध मन्दिर उन्हीं पल्लव राजाओं के बनवाये हुए हैं। मन्दिर की पहाड़ी दीवारें मूरतों से भर दी गई हैं। आदमी और जानवर, देवता और राक्षस इस खूबी के साथ सिरजे गये हैं कि लगता है कलाकार सिरजनहार बन गया है। अर्जुन का पशुपति शिव के अस्त्र के लिये तप कला का अनुपम नमूना है। इसी प्रकार गंगावतरण भी—गंगा का पृथ्वी पर उतरना—अचरज की चातुरी से दिखाया गया है। मनुष्य, जानवर सभी गंगा के भूमि पर आने से प्रसन्न हो उठे हैं। उनकी खलबली पत्थर में जैसे जी उठी है।



अजंत का नप

११. दकन के मन्दिर

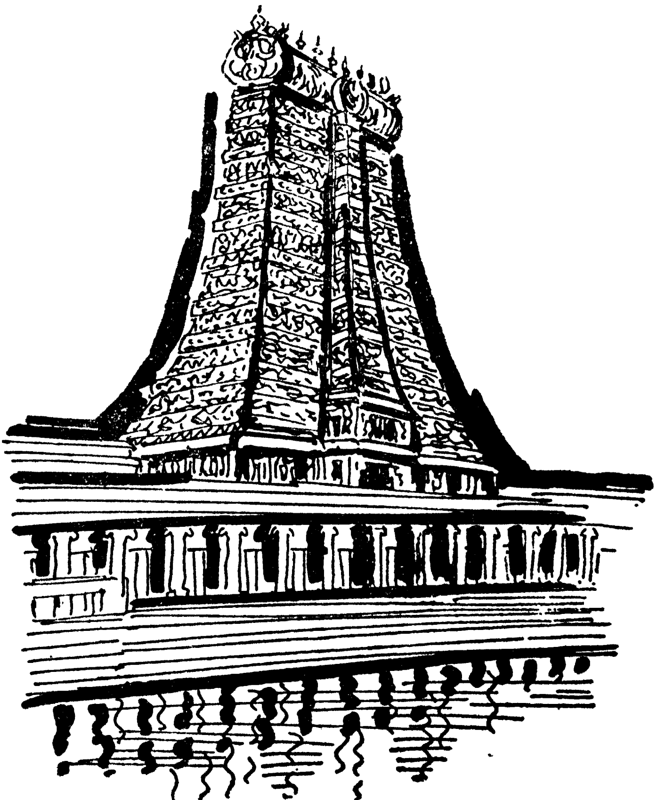
'दकन' नाम भी वास्तव में 'दक्षिण' से ही बना है, पर बहुत समय से उसका प्रयोग भारत के उस भाग के लिये होता रहा है जो विन्ध्याचल और कृष्णा के बीच पड़ता है। कृष्णा के दक्षिण की भूमि को शुद्ध दक्षिण या दक्षिण भारत कहते हैं। इसका उत्तरी भाग दकन से मिल जाता है। मैसूर और आन्ध्र के कुछ भाग इसी खण्ड में पड़ते हैं। इस भूखण्ड में उत्तर और दक्षिण दोनों प्रकार के मन्दिरों की बनावट के मिले-जुले मन्दिर बने। इनके विशाल केन्द्र मैसूर में हलेबिद और बेलूर में बने। इन मन्दिरों की सुन्दरता कहने की बात नहीं है, कही भी वह नहीं जा सकती। विशाल फैले हुए इनके आँगन और बरामदे सैकड़ों-हज़ारों इनकी दीवारों के खम्भे, ऊँचे आकाशचुम्बी इनके कलश-कंगूरे बयान की चीज़ नहीं हैं, देखने की हैं। इनके

पास ही और उत्तर में विजय नगर के खण्डहर हंफी के पास आज भी खड़े हैं। विजय नगर का साम्राज्य आज से कोई पाँच सौ साल पहले सारे दकन पर फैला हुआ था। विजय-नगर की राजधानी के ही ये खण्डहर हंफी में हैं, मन्दिर और महल। लगता है जैसे टूटी इमारतों का एक जंगल ही खड़ा हो गया है। आदमी के कौशल ने इन्हें खड़ा किया और आदमी की ही जहालत ने इन्हें बरबाद कर दिया।

दूर दक्षिण के मन्दिर हमारे उत्तर के मन्दिरों से बहुत भिन्न हैं। वे एक-एक अकेले मन्दिर नहीं, कई-कई मन्दिरों के परिवार हैं। मन्दिर क्या है एक गाँव ही होता है। मन्दिर का बाहरी द्वार मन्दिर की-ही तरह ऊँचा होता है, कभी-कभी मन्दिर से भी ऊँचा, एक पर एक चढ़ी मंजिलों वाला। उसे 'गोपुरम्' कहते हैं। इसी गोपुरम् के पीछे अनेक मंजिलों के शिखर वाला गगनचुम्बी मन्दिर होता है, दूर तक फैला हुआ, अनेक बराम्दों-कमरों वाला। मन्दिर के चारों ओर दौड़ता आँगन होता है। उसी में लोग मन्दिर की परिकरमा करते हैं। आँगन के चारों ओर परकोटे के सहारे सैकड़ों कमरे बने रहते हैं। एक लम्बा-चौड़ा तालाब भी आँगन में होता है जिससे हाथ-पैर धोकर दर्शन करने वाले भक्त शुद्ध हो लें।

इस प्रकार के मन्दिरों की संख्या दक्षिण में थोड़ी नहीं

हज़ारों में है। कांजीवरम, धर्मपुरा, तन्जौर, रामेश्वरम्, सर्वत्र इन अचरज भरे मन्दिरों की भरमार है। इन नगरों के एक-एक मन्दिर के वर्णन के लिये समूची पोथी की



दक्षिण का एक विशाल मन्दिर

जरूरत होगी। इनकी लम्बाई-चौड़ाई उत्तर के मन्दिरों से कई गुनी होती है। पहाड़ की गुफायें खोदकर मन्दिर बनाने में तो अधिक मेहनत का ख़र्च हुआ है। इन मन्दिरों में बुद्धि और कला का उपयोग हुआ है। ये मन्दिर संसार की कला के अचरज के नमूने हैं।

उपसंहार

भारत की भूमि तो प्रकृति ने बनाई है, पर उसके ऊपर मन्दिरों की खूबसूरती आदमी ने सिरजी है। मन्दिर और मस्जिदें, लाट और मीनारें, महल और मक़बरे एक से एक अभिराम इस धरा पर उठते चले गये हैं जिनके मुकाबले की इमारतें दुनिया में नहीं हैं।

संसार के हज़ारों घुमक्कड़ और पारखी समुन्दर पार से इन इमारतों को देखने आते हैं और देखकर हैरत में पड़ जाते हैं। इन इमारतों की दुनिया भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक उठती चली गई है। यह हमारे विश्वास और आस्था की दुनिया है जो हमारे कलाकारों के तप और साधना से खड़ी हुई है। सारे देश को ये इमारतें एक सूत में नाथकर उसकी संस्कृति और सभ्यता को एकरूपता देती हैं।

मन्दिरों-मस्जिदों का यह परिवार भारत की कला और भक्ति का है, आदमी का बनाया, संसार का गौरव। इन्हीं की छाया में देश की इन्सानियत साँस लेती है। इन्हीं के देवताओं की सौगन्ध खाती है। इनके खण्डहर भारत के शालीन इतिहास और गौरव के प्रतीक बनते हैं। भारत के बच्चे-बूढ़े इन पर गर्व करते हैं। और ये खण्डहर संसार के लाख-लाख रत्नों से क़ीमती हैं, हमारी ममता और मोह के पोर-पोर में जड़े हैं ये रतन। जब तक सूरज और चाँद रहें, जब तक गंगा-जमुना की धारा बहे तब तक ये रतन चमकते रहें।

• • •